भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-5, अंक-8-9	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा-25.00
शुक्रवार, 12 सित. '81	मानद सहसम्पादक: डॉ. महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	प्रति अंक : 2.25

कृपावतार स्वामिश्री सहजानंदजी

यावच्चन्द्रदिवाकरौ घंटी बजेगी

जूनागढ़ में मुसलाधार बारिश हुई और द्वेषियों ने जो भ्रमजाल फैलाई थी वह नष्ट हुई, किन्तु द्वेषियों का द्वेष अत्यधिक बढ़ गया।

मंदिर धीरे-धीरे ऊपर उठ रहा था। पत्थर का विशाल प्रांगण बन गया तब द्वेषी-लोक मजाक करने लगेः 'मंदिर-निर्माण तो होने वाला नहीं है। स्वामिनारायण के साधुओं के पास रोटी भी नहीं है; इतना धन कहां से लायेंगे? चलो यह प्रांगण बच्चों को खेलने के काम आयेगा।'

इस मजाक का उत्तर असाधारण तेजस्वी शब्दों में गुणातीतानंदस्वामी ने दियाः ''क्या बात चल रही है? यहां तो हम द्वारका खड़ी कर देंगे और मूर्तिमान् सिद्धेश्वर की स्थापना करेंगे और....ये ही सब यहाँ सर नवां कर आयेंगे। इस मंदिर की नींव पाताल तक पहुँची हुई है। अतः जब तक सूर्य-चन्द्र है—'यावद्चन्द्रदिवाकरौ' तब तक यहाँ भगवान् की आरती होगी, और घंटी बजेगी।''

छाती में शूल

गुणातीतानंदस्वामी के इन शब्दों से द्वेषियों को भीतर प्रतीति तो हो गई, किन्तु द्वेष बढ़ता रहा। इतने में एक और प्रसंग हुआ। जहाँ मन्दिर निर्माण हो रहा था। उस स्थान के पास एक साधु बाबा का छोटा स्थान था। इस बाबा ने अफसरों के पास जा कर शिकायत करी। ''सारा दिन स्वामिनारायण के साधु लोग पत्थर तोड़ते हैं और टिक्-टिक् करते हैं; अतः मेरी छाती में शूल चुभता हो ऐसा दर्द होता है। अतः इन सब साधुओं को भगा दो।'' अफसर लोग अगले प्रसंगों से जानते थे कि स्वामिनारायण के संतों को हटाना मुश्किल है। अतः बाबाजी को आश्वासन दिया कि स्वामिनारायण के साधुओं को न खाने का है, न ठहरने का। थोड़े ही दिन में यहाँ से भाग जायेंगे। स्वामिनारायण के साधु तो जमे रहे, किन्तु बाबाजी को द्वेष के फलस्वरूप संसार छोड़ कर जाना पड़ा।

कहने का तात्पर्य यह है कि जूनागढ़ मंदिर में प्रारंभ में एक नहीं अनेक विघ्न आये, किन्तु

गुणातीतानंदस्वामी और ब्रह्मानंदस्वामी डटे ही रहे और मंदिर-निर्माण का कार्य तेजी से चलता रहा।

गुणातीतानंदस्वामी की जमानत महाराज ने दी

वास्तव में इस लीला के पीछे महाराज का उद्देश्य तो अपने संतों की महिमा बढ़ाने का ही था... मंदिर-निर्माण के साथ-साथ मंदिर के महंत की असली महिमा की प्रतिष्ठा करने का था !

एक प्रसंग इस तथ्य की पुष्टि करेगा। उसी समय की बात है। महाराज ने गढ़डा में प्रबोधिनी एकादशी का बड़ा उत्सव किया था और उसमें सम्मिलित होने के लिये दूर-दूर से अपने सब संतों को बुलाया था। ब्रह्मानंदस्वामी तो शीघ्र आ गये थे, किन्तु जूनागढ़ में मंदिर निर्माण में लगे हुए गुणातीतानंदस्वामी सम्मेलन के दो दिन पूर्व ही आ सके। सम्मेलन भव्यरूप से सम्पन्न हुआ। पूर्णाहुति हो गई और गृहस्थी हरिभक्त अपने अपने गाँव चले गये। इसके पश्चात् एक दिन भगवान स्वामिनारायण ने अपने निजी निवास 'अक्षर ओरडी' पर सब परमहंसों को बुलाया और कहाः ''हमने आप सब को पंच वर्तमान (स्वामिनारायण भगवान द्वारा प्रस्थापित पांच नियम–जिसका जिक्र आगे हो चुका है।) पालन करने को कहा है उसका दृढ़ता से पालन करना। इसमें तनिक भी शिथिलता नहीं होने देनी चाहिए। आज हमारी इच्छा है कि इसमें थोड़ी भी शिथिलता न हो इसके लिये आप परस्पर की जमानत दीजिए।

महाराज का उद्देश्य साधुओं की साधुता को वज्र दृढ़ करने की थी। साथी परमहंस जमानत दे तो स्वाभाविक अपने को नियम पालने का उत्साह होता है। इतना ही नहीं एक बड़ी जिम्मेदारी आती है। 'उन्होंने मेरी जमानत दी है मुझे इसको निभाना ही पड़ेगा'–यह संकल्प प्रतिदिन-प्रतिक्षण भीतर में मूर्तिमान होता है।

जब यह जमानत प्रकरण पूर्ण हुआ तब गुणातीतानन्दस्वामीजी महाराज के दर्शन के लिये 'अक्षर ओरडी' आये और महाराज को साष्टांग दंडवत् प्रणाम कर के एक ओर बैठ गये। तब सद्. ब्रह्मानन्दस्वामी बोल उठेः ''गुणातीतानन्दस्वामी भी आ गये। किन्तु इनकी जमानत कौन देगा? हमने तो परस्पर की जमानत दे दी। अब कोई शेष नहीं बचा है।''

सद्. ब्रह्मानन्दस्वामी की यह बात सुनकर महाराज हंस पड़े और कहाः ''स्वामिन् ! इनकी जमानत मैंने स्वयं कब से दे दी है।'' यह सुनकर सारी सभा स्तब्ध हो गई। सब को दृढ़ निश्चय हो गया कि गुणातीतानन्दस्वामी सामान्य संत हो ही नहीं सकते।

गुणातीतानन्दस्वामी भी महाराज की अनुवृत्ति में निरन्तर रहते थे। महाराज की इच्छा और स्वामी का कार्य एक ही था। महाराज के एक-एक संकल्प को चरितार्थ करने में ही इनके जीवन का महान् आनन्द था, जीवन की यह ही सार्थकता थी, जीवन का यह ही ध्येय था।

सामीप्य नहीं आज्ञाधारकता !

हम जानते हैं कि महाराज की मूर्ति का सान्निध्य सब कोई चाहते थे। गुणातीतानन्दस्वामी तो अर्ध रात्रि में भी बारिश में भीगते हुए खड़े रहते थे–महाराज के दर्शन के लिये ! किन्तु जब महाराज की आज्ञा होती थी तब वे अपनी इस सामिप्य की चाहना को छोड़ कर महाराज का आज्ञा का पालन करने में तनिक भी अरुचि नहीं दिखाते थे।

वास्तव में तो गुणातीतानन्दस्वामी के भीतर अखंड महाराज की मूर्ति रहती थी। अपनी असाधारण भक्ति से महाराज को इन्होंने अपने समग्र अस्तित्व में धारण कर रखा था। (अतः तो

महाराज गुणातीतानंदस्वामी को अपना अक्षरधाम– जहाँ सदैव महाराज निवास करते हैं– कहते थे। अतः गुणातीतानंदस्वामी को पार्थिव सामीप्य हो या न हो कोई फर्क नहीं पड़ता था। किन्तु प्रत्यक्षस्वरूप के सान्निध्य की चाहना में इनके दर्शन के खिंचाव में निहित भक्तिभाव का इन्होंने अपने जीवन से दर्शन करवाया है.....पर साथ-साथ यह भी स्पष्ट कर दिया था कि सामीप्य से बढ़ कर–'आज्ञाधारकता'!

महाराज स्वामी की यह अनन्य भक्ति जानते थे और साथ-साथ अपने अन्य परमहंसों में भी ऐसी जागृति लाने हेतु लीला करते रहते थे।

इस समय जब जूनागढ़ जाने का प्रसंग आया तब महाराज ने सब परमहंसों को पूछाः

''इस समय जूनागढ़ जाने के लिये कौन अपना नाम देते है? गुणातीतानन्दस्वामी तो जैसा कि आगे कहा सामीप्य की चाहना छोड़कर महाराज की अनुवृत्ति में ही तत्पर थे। अतः उन्होंने कहा :

''महाराज ! मेरी जोड़ी का साधु दे दीजिए। मैं आज ही चला जाऊँगा।

महाराज ने कहाः

''यह महासुखानन्द साधु आपके साथ आयेंगे।'' महासुखानन्दस्वामी ने कहाः

''जाऊ तो सही, किन्तु यहाँ जो रोज, लड्डू मिलते हैं वे वहाँ मिलेंगे?

महाराज ने हँसकर पूछाः

''रोज के कितने लड्डु खाते हो !

'महाराज ! कोई गिनती नहीं है।' सब हँस पड़े।

वास्तव में महासुखानंदस्वामी महाराज को छोड़कर जाना ही नहीं चाहते थे। तब अन्य साधुओं को पूछाः

किसी ने कहाः ''मेरे गुरु मना करते है।'' किसी ने कहा। ''मेरा साथी मना करता है।''

तब महाराज ने कहाः ''आप लोग निश्चय नहीं कर सकते हैं। अब हम निश्चय करेंगे।'' सब ने यह बात में स्वीकृति दी।

महाराज लिखने लगेः

(1) गुणातीतानंदस्वामी,

(2) आनंदब्रह्मचारी

(3) पुरुषोत्तमदास, और

(4) जोरा भगत।

इन चारों ने प्रेम से महाराज की बात का स्वीकार किया। जोरा भगत का साथी नहीं था तो महाराज ने कहाः 'तुम्हारा साथी मैं'। वह भी खुश हो गया। महाराज ने सबको आशीर्वाद दिया। सबको पाथेय दिया और यह मंडली विदाय लेने के लिये तैयार हुई। तब नारणदास साधु सभा में उठ कर कहने लगेः

''महाराज ! आपकी आज्ञा हो तो मैं जाऊंगा।

महाराज अत्यन्त प्रसन्न हो गये। किन्तु पूछाः

''वहाँ जाकर क्या करोगे?'' तब नारणदास साधु ने कहाः

''जैसा यह गुणातीतानन्दस्वामी कहेंगे वैसा करूँगा।

साधु का ऐसा सरल किन्तु सेवा भावना से पूर्ण उत्तर सुनकर श्रीजी महाराज ने कहाः तब निश्चित जाईए, प्रेम से जाईए।'' अभी तो हमारे पास आपको प्रसादी देने के लिये कुछ भी नहीं है, किन्तु आईए हम मिलें कह कर महाराज ने उनको आलिंगन दिया। उसके सारे शरीर को अपने हाथ से सहलाया और वक्षःस्थल में चरणारविंद दिये और कहाः

''जाईए, सेवा कीजिए। हमारी प्रसन्नता है।''

अंततोगत्वा गुणातीतानन्दस्वामी को बुलाकर कहाः ''स्वामिन् ! जूनागढ़ का मंदिर तो हमारा ही है ऐसा हम मानते है।'' **–क्रमशः**

स्व-भाव को कैसे पहचाने ?

हरेक को परेशान करता है अपना 'स्वभाव' अर्थात् स्व का भाव ! स्वभाव टालने के लिये यह सत्संग है; जब ही हम सदा सर्वदा सुखी हो पायेंगे....। परन्तु हम अपने आप अपने प्रयत्न से स्वभाव को टाल नहीं पायेंगे। प.पू. काकाजी, प.पू. पप्पाजी और प.पू. स्वामिजी जैसे भगवत्स्वरूप संत अपनी कृपा आशीष से हमारे स्वभाव टाल देंगे। परन्तु हमारे माँगने पर ही वह टालेंगे। सो, माँगना हमें पड़ता है। अन्तर से दिल की सच्चाई से प्रार्थना हमें करनी है—(ऊपर-ऊपर से नहीं, और वे जानते हैं कि यह ऊपर-ऊपर से बोल रहा है या दिल की सच्चाई से स्वभाव टालना माँग रहा है) कि मेरा ये स्वभाव टालो। और तब ही वे हमारे स्वभाव टाल देंगे। जब तक हमारे हृदय में यह भावना उदय नहीं होगी कि हमें हमारे स्वभाव को छोड़ कर संत की प्रसन्नता पाकर भगवान की मूर्ति का अनवधिकातिशय सुख पाना है तब तक वह हमारे स्वभाव को नहीं टालेंगे ! भगवान की मूर्ति का सुख ऐसा है जिसके सामने संसार के किसी भी प्रकार के सुख एकदम फीके से है और वो सुख पाने से हम अपने आप तो सुखी रहते ही है, पर हमारे संपर्क में जो-जो आये, वह भी वह सुख का अनुभव कर जायेंगे। वह महसूस करेगा कि इसने कुछ ऐसी चीज पाई है कि इसके पास जाने से हमें शान्ति मिलती है, सुख मिलता है, आनन्द आता है और इसके पास ही बैठे रहने का दिल करा करता है.....इसके पास जीने का खिंचाव रहा करता है। पू.काकाजी चाहते हैं कि हम सभी—जो कि इनके संपर्क में है वे सब स्वभाव रहित होकर भगवान की मूर्ति का यह सुख पा लेवें और अपने संपर्क में आने वालों को बाँटते रहे। यदि किसी को समाज की सेवा भी करनी है, समाज को सहायभूत होना है, समाज को कुछ देना है—तो यह सबसे बड़ी समाज सेवा है कि वह स्वयं भगवान की मूर्ति का सुख पा ले—पूर्णता पा ले..... !

महर्षि श्री अरविंद ने स्पष्ट रूप से कही ही दिया है कि—जिसने पूर्णता पाई हो, भगवान पा लिये हो वह ही समाजसेवा कर सकता है। वरन् अपूर्ण मानव अपूर्ण समाज की क्या सेवा कर पायेगा? और जिसने पूर्णता पाई होगी उसे समाजसेवा के नारे नहीं लगाने होंगे—समाज सेवा का दिखावा नहीं करना पड़ेगा....उसका बोलना, चलना, बैठना, उठना, खाना-पीना, हँसना, रोना—सभी अपने आप सेवा बन जायेंगे....।

तो जीवन का ध्येय और कुछ होने के बजाय यह ही होना चाहिये कि हम स्वभावरहित हो जायें, ताकि भगवान हमारे में से काम कर सकें....। यह ही तो है मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य....! जो आज पू. काकाजी, पू. पप्पाजी और पू. स्वामिजी द्वारा हमारे लिए पाना सुलभ है, वरन् बड़े-बड़े ऋषि-मुनि कठिन तपश्चर्या के बाद भी वासनारहित नहीं हो पाये, तो स्वभाव रहित होने की बात ही कहाँ? और आज यदि यह मौज हमे मिली है—स्वभावरहित होकर भगवान पा लेने की ! तो यह छोड़कर अगर हम और उद्यम करेंगे, तो हम जैसे और अधिक मूर्ख किसको समझे? जो सोना छोड़ कर पित्तल लेने को तैयार हो !

तो, स्वभाव रहित होकर भगवान पा लेना—यह ही हमारी बुद्धिमत्ता की निशानी है। परन्तु जिस स्वभाव को टालना है....उस स्वभाव को पहचाना कैसे जायेगा?

स्वभाव को पहचानने के तीन रास्ते है....

(1) मन में वैसे ही सहज जो इच्छा उठती हैः खाने की, पीने की, धन की, स्त्री को पुरुष की, पुरुष को स्त्री की, वह वासना है। परन्तु भजन करते-करते अपने स्वधर्म के अतिरिक्त तीव्रता से जो भी संकल्प उठे-वे हमारे स्वभाव है। व्यवहार के या स्वधर्म के सामान्य संकल्प उठे वे स्वभाव में नहीं गिने जाते....। उनसे तो अलग होकर भगवान की मूर्ति की स्मृति में लीन हो जाना.....

(2) हमारे काम में या हमें सौंपी हुई कोई प्रवृत्ति सेवा करते समय–

किसी का कोई विरोध होने पर,
रुकावट आने पर,
किसी के अड़ जाने पर,
हमारी मनमानी न होने देने पर,
अपने ढंग से काम न होने देने पर,
किसी से कोई टीका चर्चा होने पर,
हमें जो–
Feel हो जाता है,
चुभता है,
गुस्सा आ जाता है,
रोना आ जाता है,
जंचता नहीं,
स्पंदन होता है,
चिड़ आ जाती है,
बेचैनी आ जाती है,
उदासीनता में जो हम चले जाते हैं

यह ही स्वभाव है। ऐसे प्रसंग पर हम रजोगुण, तमोगुण में खिंचे जाते हैं और न कहने के शब्द किसी को कह भी देते हैं। सब के प्रेरक-प्रवर्तक नियंत्रक, सब करने-कराने वाले संत ही है यह हम भूल जाते हैं, अतः ऐसा हो जाता है। मैं आत्मतत्व हूँ नित्यतत्त्व हूँ, अक्षररूप हूँ, ब्रह्मरूप हूं यह Consciousness नहीं रहने पर यह होता है। ऐसे अवसर हम अपना बचाव करने या कुछ बहाना निकालने को लगते हैं। साथ में रोष, स्पंदन, जुदाई, का भाव होगा और भावना में भी फर्क पड़ जायेगा।

(3) जिससे कि–

– हम भगवान की मूर्ति भूल जायें

– एक या दूसरे ढंग से हम किसी के अभाव अवगुण लेने या दोष देखने में पड़ जायें,

– हमारा आनंद चला जाए,

– भगवान के कर्ताहर्तापन को हम भूल जायें यह हमारा स्वभाव है।

स्वभाव का दर्शन होने पर परिताप और प्रार्थना करनी और फिर जो भी होवे साक्षीभाव से देखते रहना सहना पड़े तो सह लेना...। भूलना नहीं कि मेरी प्रार्थना के फलस्वरूप संत ने यही करुणा बरसाई है, दया करी है, सो मेरे स्वभाव को निकालने के लिये ही अब संत ने यह प्रसंग खड़ा करा है। इस भावना से ही संत प्रसन्न हो जाते हैं और जीव को संबल प्राप्त होता है....अंततोगत्वा इस कुरुक्षेत्र का अंत आने पर सच्चिदानंद का आनन्द आयेगा।

मौके पर हम भगवान और संत के कर्ता-हर्तापन को मानेंगे-स्वीकार करेंगे दिल से स्वीकार करेंगे, तो बस केवल इस भावना से ही भगवान और संत हमारे वश में आ जाते है। वे खुश हो जाते है कि अहो हो ! तूने प्रसंग पे मुझे देखा ! बिना दूसरा आकार देखे–आधार लिये थोड़ी अगर हम धीरज रख लेंगे, साक्षीभाव रखेंगे और काका-काका, स्वामी-स्वामी, करने लग जायेंगे तो हमारे अनुभव में आयेगा कि बाजी एकदम पलट गई– Table turn हो गया। हमारा कोई कुछ बिगाड़ नहीं पाया। Daily के routine व्यवहार में series of spiritual experiences हम देखते जायेंगे– आश्चर्यकारक घटनाएं ये लगेंगी। तो क्यों ना यह हम आजमायें?

Regd. No. D (D) 655

SELF REALISATION

The Divine Consciousness-the Entry into Real & True Spirituality

This is the true and Real Yog as any one can experience and realise the Fundamental Eternal Ultimate Truth or Reality. Common denominator for all human beings to start with the 1st Step will be from Within-from the Heart's feelings and love towards the Divine Ultimate Supreme teality-Call Him by any name-Jesus, Ram-Buddha-Mahavir, Brahman or Paramatma, Bhagwan or God or Creative Energy-(spiritual) etc.

The seekers of Eternal truth, Happiness & Bliss-must then intensely sinerely, completely and totally-Aspire-for experiencing IT-& then Realising it in this life and it has to be done with faith and trust in its invisible, unknowable existence. But there is a definite, positive process-method & technique-for understanding the unknowable-invisible-unlike science-from the basic inquiry-Unknown to known Let us combine both the features and aspects-the faith and reason for his bold experiment on our own self from within and watching the World-external phenomena as the witnessing spirit for study, understanding and also experiencing the inner basic truth of it objectively, subjectively and spiritually.

There are number of road to Rome, but the guide known the easy and simple short cut to our goal or destination or ideal or life's ambition and it is certain and positive and simple to follow the instruction from such a pathfinder or guide or Real Expert Master or Realised Saint.

If one is most fortunate and extrely lucky. He may easily get in touch or contact with such an Expert Guide or Guru or Master, but to any Real sincere Aspirant normally the True Expert Master generally meets him and draws him in His contact for further spiritual Enlightment. Real Guru works like the Light House-like the Sun just freely giving and diffusing light and heat as is required for protection nourishment and progressive advancement and growth without expecting any worldy fruits and benefits on selfish motives or desires and egoistic tendencies.

You are most luck and fortunate to be in our company and will surely, positively and definitively progress in spiritual masters.

May God Bless you with His infinite Love & Compassion & Charity. **-Dadukaka**

व्रतोत्सवसूची

1. दि.	7.10.81	बुधवार	नवमी, श्री हरिजयंती
2. दि.	8.10.81	गुरुवार	विजयादशमी–दशहरा
3. दि.	9.10.81	शुक्रवार	एकादशी, व्रत
4. दि.	12.10.81	सोमवार	शरदपूर्णिमा, मू.अ.मू. गुणातीतानंदस्वामी का प्राकट्यदिन, प.पू.प्र.ब्र.स्व. हरिप्रसादस्वामिजी का दीक्षादिन
5. दि.	15.10.81	गुरुवार	प.पू. जागास्वामी का प्राकट्यदिन
6. दि.	23.10.81	शुक्रवार	एकादशी, व्रत
7. दि.	25.10.81	रविवार	धनत्रयोदशी
8. दि.	27.10.81	मंगलवार	दीवाली
9. दि.	28.10.81	बुधवार	विक्रमसंवत 2038 का नूतनवर्ष प्रारंभ, अन्नकूटोत्सव

Published by Sadhu Mukundjivandas for Yogi Divine Society,
A 103, Ashokvihar-III, Delhi-110 052. India, Tel. 718838
Printed at Thakkar printing press, 2588, Basti Punjabian, Subzi Mandi, Delhi-110 007 Phone : 524058